भरद्वाज द्वारा भरत का सत्कार

दोहा :

*** करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ अतिथि पेमप्रिय होहु। कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु॥212॥

भावार्थ:

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजी ने उनका समाधान करके कहा- अब आप लोग हमारे प्रेम प्रिय अतिथि बनिए और कृपा करके कंद-मूल, फल-फूल जो कुछ हम दें, स्वीकार कीजिए॥212॥

चौपाई :

*** सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू। भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू॥ जानि गुरुइ गुर गिरा बहोरी। चरन बंदि बोले कर जोरी॥1॥

भावार्थ:

मुनि के वचन सुनकर भरत के हृदय में सोच हुआ कि यह बेमौके बड़ा बेढब संकोच आ पड़ा फिर गुरुजनों की वाणी को महत्वपूर्ण (आदरणीय) समझकर, चरणों की वंदना करके हाथ जोड़कर बोले-॥1॥

*** सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरम यहु नाथ हमारा॥ भरत बचन मुनिबर मन भाए। सुचि सेवक सिष निकट बोलाए॥2॥

भावार्थ:

हे नाथ! आपकी आज्ञा को सिर चढ़ाकर उसका पालन करना, यह हमारा परम धर्म है। भरतजी के ये वचन मुनिश्रेष्ठ के मन को अच्छे लगे। उन्होंने विश्वासपात्र सेवकों और शिष्यों को पास बुलाया॥2॥

*** चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई। भलेहिं नाथ कहि तिन्ह सिर नाए। प्रमुदित निज निज काज सिधाए॥3॥

भावार्थ:

(और कहा कि) भरत की पहुनाई करनी चाहिए। जाकर कंद, मूल और फल लाओ। उन्होंने 'हे नाथ! बहुत अच्छा' कहकर सिर नवाया और तब वे बड़े आनंदित होकर अपने-अपने काम को चल दिए॥3॥

*** मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता॥ सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं। आयसु होइ सो करहिं गोसाईं॥4॥

भावार्थ:

मुनि को चिंता हुई कि हमने बहुत बड़े मेहमान को न्योता है। अब जैसा देवता हो, वैसी ही उसकी

पूजा भी होनी चाहिए। यह सुनकर ऋद्धियाँ और अणिमादि सिद्धियाँ आगईं (और बोलीं-) हे गोसाईं! जो आपकी आज्ञा हो सो हम करें॥4॥

दोहा :

*** राम बिरह ब्याकुल भरतु सानुज सहित समाज। पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज॥213॥

भावार्थ:

मुनिराज ने प्रसन्न होकर कहा- छोटे भाई शत्रुघ्न और समाज सहित भरतजी श्री रामचन्द्रजी के विरह में व्याकुल हैं, इनकी पहुनाई (आतिथ्य सत्कार) करके इनके श्रम को दूर करो॥213॥

चौपाई :

*** रिधि सिधि सिर धरि मुनिबर बानी। बड़भागिनि आपुहि अनुमानी॥ कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई॥1॥

भावार्थ:

ऋद्धि-सिद्धि ने मुनिराज की आज्ञा को सिर चढ़ाकर अपने को बड़भागिनी समझा। सब सिद्धियाँ आपस में कहने लगीं- श्री रामचन्द्रजी के छोटे भाई भरत ऐसे अतिथि हैं, जिनकी तुलना में कोई नहीं आ सकता॥1॥

*** मुनि पद बंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू॥ अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना॥2॥

भावार्थ:

अतः मुनि के चरणों की वंदना करके आज वही करना चाहिए, जिससे सारा राज-समाज सुखी हो। ऐसा कहकर उन्होंने बहुत से सुंदर घर बनाए, जिन्हें देखकर विमान भी विलखते हैं (लजा जाते हैं)॥2॥

*** भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाषे॥ दासीं दास साजु सब लीन्हें। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हें॥3॥

भावार्थ:

उन घरों में बहुत से भोग (इन्द्रियों के विषय) और ऐश्वर्य (ठाट-बाट) का सामान भरकर रख दिया, जिन्हें देखकर देवता भी ललचा गए। दासी-दास सब प्रकार की सामग्री लिए हुए मन लगाकर उनके मनों को देखते रहते हैं (अर्थात उनके मन की रुचि के अनुसार करते रहते हैं)॥3॥

*** सब समाजु सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं॥ प्रथमहिं बास दिए सब केही। सुंदर सुखद जथा रुचि जेही॥4॥

भावार्थ:

जो सुख के सामान स्वर्ग में भी स्वप्न में भी नहीं हैं, ऐसे सब सामान सिद्धियों ने पल भर में सजा दिए। पहले तो उन्होंने सब किसी को, जिसकी जैसी रुचि थी, वैसे ही, सुंदर सुखदायक निवास

स्थान दिए॥4॥

दोहा :

*** बहुरि सपरिजन भरत कहुँ रिषि अस आयसु दीन्ह। बिधि बिसमय दायकु बिभव मुनिबर तपबल कीन्ह॥214॥

भावार्थ:

और फिर कुटुम्ब सहित भरतजी को दिए, क्योंकि ऋषि भरद्वाजजी ने ऐसी ही आज्ञा दे रखी थी। (भरतजी चाहते थे कि उनके सब संगियों को आराम मिले, इसलिए उनके मन की बात जानकर मुनि ने पहले उन लोगों को स्थान देकर पीछे सपरिवार भरतजी को स्थान देने के लिए आज्ञा दी थी।) मुनि श्रेष्ठ ने तपोबल से ब्रह्मा को भी चकित कर देने वाला वैभव रच दिया॥214॥

चौपाई :

*** मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका॥ सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी॥1॥

भावार्थ:

जब भरतजी ने मुनि के प्रभाव को देखा, तो उसके सामने उन्हें (इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि) सभी लोकपालों के लोक तुच्छ जान पड़े। सुख की सामग्री का वर्णन नहीं हो सकता, जिसे देखकर ज्ञानी लोग भी वैराग्य भूल जाते हैं॥1॥

*** आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहग मृग नाना॥ सुरभि फूल फल अमिअ समाना। बिमल जलासय बिबिध बिधाना॥2॥

भावार्थ:

आसन, सेज, सुंदर वस्त्र, चँदोवे, वन, बगीचे, भाँति-भाँति के पक्षी और पशु, सुगंधित फूल और अमृत के समान स्वादिष्ट फल, अनेकों प्रकार के (तालाब, कुएँ, बावली आदि) निर्मल जलाशय,॥2॥

*** असन पान सुचि अमिअ अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से॥ सुर सुरभी सुरतरु सबही कें। लखि अभिलाषु सुरेस सची कें॥3॥

भावार्थ:

तथा अमृत के भी अमृत-सरीखे पवित्र खान-पान के पदार्थ थे, जिन्हें देखकर सब लोग संयमी पुरुषों (विरक्त मुनियों) की भाँति सकुचा रहे हैं। सभी के डेरों में (मनोवांछित वस्तु देने वाले) कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं, जिन्हें देखकर इन्द्र और इन्द्राणी को भी अभिलाषा होती है (उनका भी मन ललचा जाता है)॥3॥

*** रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी॥ स्रक चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरष बिसमय बस लोगा॥4॥

भावार्थ:

वसन्त ऋतु है। शीतल, मंद, सुगंध तीन प्रकार की हवा बह रही है। सभी को (धर्म, अर्थ, काम और

मोक्ष) चारों पदार्थ सुलभ हैं। माला, चंदन, स्त्री आदि भोगों को देखकर सब लोग हर्ष और विषाद के वश हो रहे हैं। (हर्ष तो भोग सामग्रियों को और मुनि के तप प्रभाव को देखकर होता है और विषाद इस बात से होता है कि श्री राम के वियोग में नियम-व्रत से रहने वाले हम लोग भोग-विलास में क्यों आ फँसे, कहीं इनमें आसक्त होकर हमारा मन नियम-व्रतों को न त्याग दे)॥4॥

दोहा :

*** संपति चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार। तेहि निसि आश्रम पिंजराँ राखे भा भिनुसार॥215॥

भावार्थ:

सम्पत्ति (भोग-विलास की सामग्री) चकवी है और भरतजी चकवा हैं और मुनि की आज्ञा खेल है, जिसने उस रात को आश्रम रूपी पिंजड़े में दोनों को बंद कर रखा और ऐसे ही सबेरा हो गया। (जैसे किसी बहेलिए के द्वारा एक पिंजड़े में रखे जाने पर भी चकवी-चकवे का रात को संयोग नहीं होता, वैसे ही भरद्वाजजी की आज्ञा से रात भर भोग सामग्रियों के साथ रहने पर भी भरतजी ने मन से भी उनका स्पर्श तक नहीं किया।)॥215॥ मासपारायण, उन्नीसवाँ विश्राम

चौपाई :

*** कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा। नाई मुनिहि सिरु सहित समाजा। रिषि आयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाषी॥1॥

भावार्थ:

(प्रातःकाल) भरतजी ने तीर्थराज में स्नान किया और समाज सहित मुनि को सिर नवाकर और ऋषि की आज्ञा तथा आशीर्वाद को सिर चढ़ाकर दण्डवत् करके बहुत विनती की॥1॥

*** पथ गति कुसल साथ सब लीन्हें। चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हें॥ रामसखा कर दीन्हें लागू। चलत देह धरि जनु अनुरागू॥2॥

भावार्थ:

तदनन्तर रास्ते की पहचान रखने वाले लोगों (कुशल पथप्रदर्शकों) के साथ सब लोगों को लिए हुए भरतजी त्रिकूट में चित्त लगाए चले। भरतजी रामसखा गुह के हाथ में हाथ दिए हुए ऐसे जा रहे हैं, मानो साक्षात् प्रेम ही शरीर धारण किए हुए हो॥2॥

*** नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया। पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया॥ लखन राम सिय पंथ कहानी। पूँछत सखहि कहत मृदु बानी॥3॥

भावार्थ:

न तो उनके पैरों में जूते हैं और न सिर पर छाया है, उनका प्रेम नियम, व्रत और धर्म निष्कपट (सच्चा) है। वे सखा निषादराज से लक्ष्मणजी, श्री रामचंद्रजी और सीताजी के रास्ते की बातें पूछते हैं और वह कोमल वाणी से कहता है॥3॥

*** राम बास थल बिटप बिलोकें। उर अनुराग रहत नहिं रोकें॥ देखि दसा सुर बरिसहिं फूला।

भइ मृदु महि मगु मंगल मूला॥4॥

भावार्थ:

श्री रामचंद्रजी के ठहरने की जगहों और वृक्षों को देखकर उनके हृदय में प्रेम रोके नहीं रुकता। भरतजी की यह दशा देखकर देवता फूल बरसाने लगे। पृथ्वी कोमल हो गई और मार्ग मंगल का मूल बन गया॥4॥

दोहा :

*** किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात। तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात॥216॥

भावार्थ:

बादल छाया किए जा रहे हैं, सुख देने वाली सुंदर हवा बह रही है। भरतजी के जाते समय मार्ग जैसा सुखदायक हुआ, वैसा श्री रामचंद्रजी को भी नहीं हुआ था॥216॥

चौपाई :

*** जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥ ते सब भए परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू॥1॥

भावार्थ:

रास्ते में असंख्य जड़-चेतन जीव थे। उनमें से जिनको प्रभु श्री रामचंद्रजी ने देखा, अथवा जिन्होंने प्रभु श्री रामचंद्रजी को देखा, वे सब (उसी समय) परमपद के अधिकारी हो गए, परन्तु अब भरतजी के दर्शन ने तो उनका भव (जन्म-मरण) रूपी रोग मिटा ही दिया। (श्री रामदर्शन से तो वे परमपद के अधिकारी ही हुए थे, परन्तु भरत दर्शन से उन्हें वह परमपद प्राप्त हो गया)॥1॥

*** यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिनहि रामु मन माहीं॥ बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥2॥

भावार्थ:

भरतजी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है, जिन्हें श्री रामजी स्वयं अपने मन में स्मरण करते रहते हैं। जगत् में जो भी मनुष्य एक बार 'राम' कह लेते हैं, वे भी तरने-तारने वाले हो जाते हैं॥2॥

*** भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मंगलदाता॥ सिद्ध साधु मुनिबर अस कहहीं। भरतहि निरखि हरषु हियँ लहहीं॥3॥

भावार्थ:

फिर भरतजी तो श्री रामचंद्रजी के प्यारे तथा उनके छोटे भाई ठहरे। तब भला उनके लिए मार्ग मंगल (सुख) दायक कैसे न हो? सिद्ध, साधु और श्रेष्ठ मुनि ऐसा कह रहे हैं और भरतजी को देखकर हृदय में हर्ष लाभ करते हैं॥3॥

*** देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। जगु भल भलेहि पोच कहुँ पोचू॥ गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेंट न होई॥4॥

भावार्थ:

भरतजी के (इस प्रेम के) प्रभाव को देखकर देवराज इन्द्र को सोच हो गया (कि कहीं इनके प्रेमवश श्री रामजी लौट न जाएँ और हमारा बना-बनाया काम बिगड़ जाए)। संसार भले के लिए भला और बुरे के लिए बुरा है (मनुष्य जैसा आप होता है जगत् उसे वैसा ही दिखता है)। उसने गुरु बृहस्पतिजी से कहा- हे प्रभो! वही उपाय कीजिए जिससे श्री रामचंद्रजी और भरतजी की भेंट ही न हो॥4॥

दोहा :

*** रामु सँकोची प्रेम बस भरत सप्रेम पयोधि। बनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि॥217॥

भावार्थ:

श्री रामचंद्रजी संकोची और प्रेम के वश हैं और भरतजी प्रेम के समुद्र हैं। बनी-बनाई बात बिगड़ना चाहती है, इसलिए कुछ छल ढूँढकर इसका उपाय कीजिए॥217॥

इंद्र-बृहस्पति संवाद

चौपाई :

*** बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहसनयन बिनु लोचन जाने॥ मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया॥1॥

भावार्थ:

इंद्र के वचन सुनते ही देवगुरु बृहस्पतिजी मुस्कुराए। उन्होंने हजार नेत्रों वाले इंद्र को (ज्ञान रूपी) नेत्रोंरहित (मूर्ख) समझा और कहा- हे देवराज! माया के स्वामी श्री रामचंद्रजी के सेवक के साथ कोई माया करता है तो वह उलटकर अपने ही ऊपर आ पड़ती है॥1॥

*** तब किछु कीन्ह राम रुख जानी। अब कुचालि करि होइहि हानी। सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥2॥

भावार्थ:

उस समय (पिछली बार) तो श्री रामचंद्रजी का रुख जानकर कुछ किया था, परन्तु इस समय कुचाल करने से हानि ही होगी। हे देवराज! श्री रघुनाथजी का स्वभाव सुनो, वे अपने प्रति किए हुए अपराध से कभी रुष्ट नहीं होते॥2॥

*** जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥ लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। यह

महिमा जानहिं दुरबासा॥3॥

भावार्थ:

पर जो कोई उनके भक्त का अपराध करता है, वह श्री राम की क्रोधाग्नि में जल जाता है। लोक और वेद दोनों में इतिहास (कथा) प्रसिद्ध है। इस महिमा को दुर्वासाजी जानते हैं॥3॥

*** भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥4॥

भावार्थ:

सारा जगत् श्री राम को जपता है, वे श्री रामजी जिनको जपते हैं, उन भरतजी के समान श्री रामचंद्रजी का प्रेमी कौन होगा?॥4॥

दोहा :

*** मनहुँ न आनिअ अमरपति रघुबर भगत अकाजु। अजसु लोक परलोक दुख दिन दिन सोक समाजु॥218॥

भावार्थ:

हे देवराज! रघुकुलश्रेष्ठ श्री रामचंद्रजी के भक्त का काम बिगाड़ने की बात मन में भी न लाइए। ऐसा करने से लोक में अपयश और परलोक में दुःख होगा और शोक का सामान दिनोंदिन बढ़ता ही चला जाएगा॥218॥

चौपाई :

*** सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवकु परम पिआरा॥ मानत सुखु सेवक सेवकाईं। सेवक बैर बैरु अधिकाईं॥1॥

भावार्थ:

हे देवराज! हमारा उपदेश सुनो। श्री रामजी को अपना सेवक परम प्रिय है। वे अपने सेवक की सेवा से सुख मानते हैं और सेवक के साथ वैर करने से बड़ा भारी वैर मानते हैं॥1॥

*** जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू॥ करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥2॥

भावार्थ:

यद्यपि वे सम हैं- उनमें न राग है, न रोष है और न वे किसी का पाप-पुण्य और गुण-दोष ही ग्रहण करते हैं। उन्होंने विश्व में कर्म को ही प्रधान कर रखा है। जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है॥2॥

*** तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥ अगनु अलेप अमान एकरस। रामु सगुन भए भगत प्रेम बस॥3॥

भावार्थ:

तथापि वे भक्त और अभक्त के हृदय के अनुसार सम और विषम व्यवहार करते हैं (भक्त को प्रेम से गले लगा लेते हैं और अभक्त को मारकर तार देते हैं)। गुणरहित, निर्लेप, मानरहित और

सदा एकरस भगवान् श्री राम भक्त के प्रेमवश ही सगुण हुए हैं॥3॥

*** राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥ अस जियँ जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई॥4॥

भावार्थ:

श्री रामजी सदा अपने सेवकों (भक्तों) की रुचि रखते आए हैं। वेद, पुराण, साधु और देवता इसके साक्षी हैं। ऐसा हृदय में जानकर कुटिलता छोड़ दो और भरतजी के चरणों में सुंदर प्रीति करो॥4॥

दोहा :

*** राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल। भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल॥219॥

भावार्थ:

हे देवराज इंद्र! श्री रामचंद्रजी के भक्त सदा दूसरों के हित में लगे रहते हैं, वे दूसरों के दुःख से दुःखी और दयालु होते हैं। फिर भरतजी तो भक्तों के शिरोमणि हैं, उनसे बिलकुल न डरो॥219॥

चौपाई :

*** सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयस अनुसारी॥ स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोसु नहिं राउर मोहू॥1॥

भावार्थ:

प्रभु श्री रामचंद्रजी सत्यप्रतिज्ञ और देवताओं का हित करने वाले हैं और भरतजी श्री रामजी की आज्ञा के अनुसार चलने वाले हैं। तुम व्यर्थ ही स्वार्थ के विशेष वश होकर व्याकुल हो रहे हो। इसमें भरतजी का कोई दोष नहीं, तुम्हारा ही मोह है॥1॥

*** सुनि सुरबर सुरगुर बर बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी॥ बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ॥2॥

भावार्थ:

देवगुरु बृहस्पतिजी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर इंद्र के मन में बड़ा आनंद हुआ और उनकी चिंता मिट गई। तब हर्षित होकर देवराज फूल बरसाकर भरतजी के स्वभाव की सराहना करने लगे॥2॥ *** एहि बिधि भरत चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं॥ जबहि रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेमु मनहुँ चहु पासा॥3॥

भावार्थ:

इस प्रकार भरतजी मार्ग में चले जा रहे हैं। उनकी (प्रेममयी) दशा देखकर मुनि और सिद्ध लोग भी सिहाते हैं। भरतजी जब भी 'राम' कहकर लंबी साँस लेते हैं, तभी मानो चारों ओर प्रेम उमड़ पड़ता है॥3॥

*** द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन पेमु न जाइ बखाना॥ बीच बास करि जमुनहिं आए। निरखि नीरु लोचन जल छाए॥4॥

भावार्थ:

उनके (प्रेम और दीनता से पूर्ण) वचनों को सुनकर वज्र और पत्थर भी पिघल जाते हैं। अयोध्यावासियों का प्रेम कहते नहीं बनता। बीच में निवास (मुकाम) करके भरतजी यमुनाजी के तट पर आए। यमुनाजी का जल देखकर उनके नेत्रों में जल भर आया॥4॥

दोहा :

*** रघुबर बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज। होत मगन बारिधि बिरह चढ़े बिबेक जहाज॥220॥

भावार्थ:

श्री रघुनाथजी के (श्याम) रंग का सुंदर जल देखकर सारे समाज सहित भरतजी (प्रेम विह्वल होकर) श्री रामजी के विरह रूपी समुद्र में डूबते-डूबते विवेक रूपी जहाज पर चढ़ गए (अर्थात् यमुनाजी का श्यामवर्ण जल देखकर सब लोग श्यामवर्ण भगवान के प्रेम में विह्वल हो गए और उन्हें न पाकर विरह व्यथा से पीड़ित हो गए, तब भरतजी को यह ध्यान आया कि जल्दी चलकर उनके साक्षात् दर्शन करेंगे, इस विवेक से वे फिर उत्साहित हो गए)॥220॥